ताल विधान : भरत कृत नाट्य शास्त्र में

डॉ0 (श्रीमती) इच्छा नायर
रीडर एवं विभागाध्यक्षा–संगीत
महिला सेवा सदन डिग्री कालेज,
इलाहाबाद

मनुष्य स्वयं अपने शरीर से नाद न उत्पन्न करके जब किसी यंत्र से नाद उत्पन्न करवाता है तो उस यन्त्र को वाद्य कहते हैं। वाद्य स्वयं में एक दृश्य वस्तु है, किन्तु इससे उत्पन्न नाद अदृश्य एवं श्रव्य है। हमारे मनीषियों ने आदिकाल से ही विभिन्न वाद्यों का वर्णन तथा निर्माण किया है। जैसे–जैसे मनुष्य सभ्य–सुंसंकृत होता गया उसे द्वारा प्रयुक्त और निर्मित वाद्य भी विकसित होते गये। आचार्य भरत ने नाट्य का ऐसा एक ही अंग नहीं माना जो संगीत प्रयोग से अछूता हो। नाट्य में संगीत का उद्देश्य दर्शकों को रसिक बनाकर उनका ध्यान नाट्यवस्तु पर केन्द्रित करना है। अतः गीत, वाद्य तथा नृत्य का प्रयोग नाट्य में उसी मात्रा में होना चाहिए जो सहृदयों की एकाग्रता में बाधक न हो।

नाट्य शास्त्र जैसा कि नाम से ज्ञात है कि नाट्य तथा तत्सम्बन्धी विषयों का ग्रन्थ है। नाट्यशास्त्र में समय–समय पर परिवर्तन तथा परिवर्धन होते रहे हैं। आज वह जिस रूप में उपलब्ध है उस पर भरत की शिष्य–प्रशिष्य परम्पराओं का और अनेक पीढ़ियों के नाट्याचार्यो का प्रभाव स्पष्ट है। वर्तमान नाट्यशास्त्र प्रायः छह हजार श्लोकों का ग्रन्थ है इसमें कुल छत्तीस अध्याय हैं कुछ विद्वान सैंतीस अध्याय मानते हैं। किन्तु नाट्य शास्त्र के प्राचीन टीकाकरण अभिनवगुप्त ने छत्तीस अध्यायों पर ही अपनी सुप्रसिद्ध टीका अभिनवभारती लिखी है। शारदा–तनय की भावप्रकाशन में यह बतलाया गया कि नाट्यशास्त्र के दो रूप थे। एक द्वादशसहस्र (12000) श्लोंको का, जो द्वादशसाहस्री कहलाता है और दूसरा षट्सहस्र (6000) श्लोंको का, जो षट्साहस्री संहिता कहलाता है।[1] आचार्य धनञ्जय, भोज एवं अभिनव गुप्त के समय तक दोनों पाठों की परम्परा चल रही थी। किन्तु वर्तमान नाट्यशास्त्र षट्साहस्री रूप में स्थापित है।

वाद्य मानव निर्मित यन्त्र है जिनकी कल्पना की कोई सीमा नहीं है। अतः वाद्यों को वर्गीकृत कर पाना एक दुष्कर कार्य है, किन्तु फिर भी आचार्य भरत ने सर्वप्रथम वाद्यों का वर्गीकरण करते हुए उन्हें चार वर्गो में विभाजित किया है।

---

1. भाव प्रकाशन, दश, अधि

"ततञ्चैवावनद्धञ्च घनं सुष्झिरमेव च।

चतुर्विधन्तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ।।[1]"

ये चार वर्ग इस प्रकार हैं–तत् अवनद्ध, घन तथा सुषिर। जिन वाद्यों पर तन्त्रियाँ (तार) फेली हों वे तत वाद्य हैं इनके अन्तर्गत वीणा आदि वाद्य आते हैं। सुषिर वर्ग के अन्तर्गत वे वाद्य आते हैं जो छिद्रयुक्त हों। सुषि का अर्थ है छिद्र। इसके अंतर्गत वंशी, शंख आदि आते हैं। अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत वे वाद्य आते हैं जिनका मुख चमड़े से ढँका हो तथा रस्सी अथवा चमड़े की बद्धी से बँधा हो। पुष्कर अथवा मृदङ मुरज आदि वाद्य इस वर्ग में आते हैं। चतुर्थ वर्ग है घन। घन का अर्थ होता है ठोस । घन वाद्य ठोस धातु से बने होते हैं। जैसे झाँझ, मँजीरा इत्यादि। वाद्यों के वर्गीकरण के पश्चात् आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के आधार पर इन वाद्यों का विस्तारपूर्वक विवरण दिया गया है। जिसमें उनके निर्माण तथा प्रयोग तथा वादकों के गुण–अवगुण का भी वर्णन है।

आचार्य भरत में नाट्य में संगीत तथा गायक, वादक को इतना महत्व दिया है कि नाट्यगृह की रचना तक में वाद्यवृन्द तथा गायक वृन्द की सुविधा का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। उपलब्ध ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र ही वाद्यों पर प्रमाणित आदि ग्रन्थ है। आचार्य भरत ने वाद्य संगीत विषयक जानकारी 28वें अध्याय में दी है। इस अध्याय का नाम आतोद्यविधानाध्याय है। आचार्य ने प्रायः आतोद्य शब्द का प्रयोग वाद्य के लिया तथा गीत का प्रयोग वर्तमान में प्रचलित कंठ संगीत के लिये किया है। तुदृ धातु का अर्थ पीडन (छेड़ना, फूँक मारना, आघात करना या टकराना) है। जिससे आतोद्य शब्द बना है।

आचार्य भरत के अनुसार कला की समयावधि के अनुसार ही लय का निर्माण होता है। जो छन्दों, अक्षरों तथा पदों की समता या पूर्ति करते हुए तदनुसार कला तथा काल के अन्तर को बतलाते हुए उसका ताल में मापन करता हो उसे लय समझना चाहिए। यह लय गीत तथा वाद्य उभयात्मिका है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि क्रिया के अनन्तर होने वाली विश्रान्ति या अन्तराल को लय कहते हैं। नाट्यशास्त्र में लय के तीन प्रकार बताये गये हैं। **द्रुत, मध्य तथा विलम्बित**। द्रुत शीघ्रतम है उससे दुगनी विश्रान्ति वाली मध्य तथा उससे चौगुनी विश्रान्ति वाली विलम्बित होती है। इनमें से किसी एक को आधार मानकर शेष दो का निर्णय होता है। लय तत्व ही संगीत को ताल के माध्यम से स्थाई, मनोरंजक, आह्लादक, उपयेागी एवं रसभाव पूर्ण बना देता है।

1. नाट्यशास्त्र–28 / 1

नाट्यशास्त्र के 31वें अध्याय में ताल निरूपण है। ताल शब्द मूल रूप से तल् अर्थात् करतल से बना है क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में हाथ से ताली बजाकर ही समय की गति को धारण किया जाता था। मुख्यतः काल और मान इस दो तत्वों के मेल से ही ताल का निर्माण हुआ है। तालः कालक्रियामानम् के अनुसार संगीत कर्म में व्यतीत होने वाले समय का मान ही ताल है। नाट्यशास्त्र में ताल निरूपण के लिये निम्नलिखित तत्वों का विवेचन किया गया है–

काल – ताल के रूप में जिस काल के खंड बनाये गये हैं, वह काल प्रमाण है।

घन– वादक और नर्तक के लिए घन वाद्य पर ताल दिये जाते थे। जिससे उन्हें अपने कर्म में अधिक स्वतन्त्रता रहती थी।

पात – सशब्द क्रिया रूप काल खंड ही पात है।

मार्ग – निश्चित काल से युक्त कला और पात के समूह को मार्ग कहते हैं।

तालों के रूप –

आचार्य भरत में प्रत्येक ताल के तीन रूप बताये हैं– यथाक्षर, द्विकल और चतुष्कल । ताल के नाम में प्रयुक्त अक्षरों की सामान्य स्थिति के अनुसार क्रियाएँ होने पर ताल यथाक्षर होता है। जब गुरू अक्षरों से श्लिष्ट होकर दुगना हो जाता है तो **द्विकल** और द्विकल का दुगना **चतुष्कल** होता है।

ताल के प्रकार –

ताल के दो प्रकार बताये गये हैं–**चतुरश्र और त्र्यश्र।** जिस काल में चार पद भाग हों वह **चतुरश्र** और जिसमें तीन पाद भाग हों वह **त्र्यश्र** कहलाता है।

चतुरस्त्र त्र्यस्त्रश्च तालो द्विविध एव हि।[1]

तालों की संख्या –

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में मुख्य पाँच तालों का वर्णन किया है–

1. चच्चत्पुटम् 2. चाचपुटम् 3. षट्पितापुत्रकम्, 4. सम्पक्वेष्टाकम्, 5. उद्घट्ट।

1. **चच्चत्पुअम्** – जब आरम्भ के दो अक्षर गुरु, एक लघु तथा अन्तिम वर्णप्लुत हो तो वह चच्चत्पुट ताल होती है। यह ताल पात भेद से तीन तथा यथाक्षरादि भेद से तीन कुल–मिलाकर छह प्रकार की होती है।

1. नाट्यशास्त्र 31/7

2. **चाचपुटम् –** इसे त्र्यस्र ताल भी कहा जाता है। एक गुरु, दो लघु तथा एक गुरु के संयोग से इसका यथाक्षर रूप बनता है। इसके भी द्विकल तथा चतुष्कल भेद हैं। 3, 6, 12, 24, 48 तथा 96 कला भेद से छह विशिष्ट भेद भी होते हैं। इस प्रकार चाचपुटम् के नौ भेद हैं।

3. **षट्पितापुत्रकम्–** इसका अन्य नाम **पञ्चपाणि** भी है। इसमें कुल छः अक्षर हैं, छः क्रियाएँ हैं, छः गुरु हैं तथा छः पद भाग हैं। इसके यथाक्षर, द्विकल और चतुष्कल तीन भेद हैं।

4. **सम्पक्वेष्टाकम्** – यह भी त्र्यस्र जाति की ताल हैं। इसे षट्पितापुत्रकम् से उत्पन्न माना गया है। इस ताल में भारीपन तथा गम्भीरता की कल्पना की जाती है। इसके भी यथाक्षर, द्विकल तथा चतुष्कल तीन भेद हैं।

5. **उद्घट्टम्** – यह भी त्र्यस्र जाति की ताल है। इस ताल में सभी गुरु हैं। यह ताल चाचपुट से उत्पन्न मानी गई है। यथाक्षर, द्विकल तथा चतुष्कल से इसके तीन भेद हैं। इस प्रकार नाट्यशास्त्र में कुल 6+9+3+3+3 = 24 तालों का वर्णन है। उपर्युक्त पाँच मुख्य तालों में से केवल चच्चपुट ताल ही चतुरस्र है और शेष चारों तालें त्र्यस्र हैं।

जिस संगीत का प्रयोग नाट्य में धार्मिक प्रयोजन से होता था उसे गीतक कहा गया । भरत ने गीतकों के लिए सप्तरूप शब्द का प्रयोग भी किया है। यद्यपि गीतकों में स्वर, ताल और पद इन तीनों तत्वों का समावेश है परन्तु प्रधानता ताल की है। गीतकों का लक्षण देते समय भरत तथा सभी आचार्यो ने सर्वप्रथम उनका ताल आधारित ढासँचा दिया है जो अपरिवर्तनीय है। अर्थात् ताल के आवर्तन, खण्ड, क्रिया आदि के ,ारा गीतकों का आकार बताया गया है।

आचार्य नान्यदेव ने भरतभाष्य में गीतों के लिए अलग अध्याय बनाया किन्तु इसमें प्रधानता ताल की ही कही है–

"सर्वेषामेव गीतानां तालस्यैव हि मुख्यता"[1]

गीतकों का प्रयोग मूलतः नाट्य के संदर्भ में था। गीतकों का प्रयोग शिवस्तुति में करने की परम्परा थी। गीतकों में रंजकता के साथ–साथ वेदपाठ के विधि–विधान की तरह ताल की विशिष्ट क्रियाओं का नियत और विशुद्ध रूप में प्रयोग अनिवार्य था। गीतकों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा गया है–

1. निर्गीत या बर्हिगीत
2. सप्तगीत

1. भरतभाष्यम् 8/2

3. ब्रह्मगीत

4. पदाश्रित गीत

5. स्वराश्रित गीत

6. ध्रुवागीत

निर्गीत या बहिर्गीत वह है जहाँ लय, स्वर के साथ सार्थक शब्दों के साथ ही निरर्थक शब्दों का भी प्रयोग होता था। निर्गीत के आविष्कर्ता नारद मुनि हैं। यह विशिष्ट अक्षर एवं ताल क्रिया में निबद्ध रहता था। सप्तगीत परम्परागत गीत का प्रकार था। इसके साथ प्रकार थे–इन सप्तगीतों में मद्रक, अपरांतक को एककल पंचपाणि ताल में, उल्लोप्यक का उद्घट्ट ताल में, रोविन्दक को द्विकल तथा यथाक्षर पंचपाणि में तथा उत्तर को यथाक्षर पंचपाणि के साथ सम्पन्न किया जाता था । ब्रह्मगीत सप्तगीतों के अतिरिक्त गायन शैलियाँ थी जिसके अंतर्गत–छन्दक, आसारित, वर्धमान, पाणिक, ऋक्, गाथा तथा साम आदि सात प्रकार आते थे। इन सभी गीतकों में चच्चत्पुट, चाचपुट तथा पंचपाणि तालों का प्रयोग होता था। पदाश्रितगीति स्थाई, आरोही, अवरोही आदि वर्णो से अलकृत पद एवं लयस से युक्त थीं। ये पदाश्रित गीतियाँ विभिन्न लयों यथा विलम्बित, मध्य तथा द्रुत पर आधारित थीं। स्वराश्रितगीतियाँ पाँच थीं–शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा और साधारण। यही पाँचव गीतियाँ शुद्ध भिन्न, गौड़, बेसर और साधारण नामक पाँच ग्रामों का निर्माण करती थीं। गीत के क्षेत्र में नाट्यशास्त्र का सबसे बड़ा अवदान ध्रुवागीत है। अभिनवगुप्त के अनुसार ध्रुवागीत तो नाट्य प्रयोग के प्राणभूत हैं। ध्रुवागीत में स्वर, पद तथा ताल का मंजुल सामंजस्य था। ध्रुवाओं के पाँच भेद थे– प्रावेशिकी, अक्षेपिकी, प्रासादिकी, अन्तरा तथा नैष्क्रामिकी। कभी–कभी मगधी तथा संस्कृत का भी प्रयोग किया जाता था। आचार्य भरत ने ध्रुवाओं को छन्द प्रधान माना है जिनमें ताल का सामान्य उल्लेख तो है लेकिन निश्चित तालों का निर्देश नहीं है। ध्रुवाओं में त्र्यश्र, चतुरश्र तथा चच्चपुटादि तालों का संकेत मात्र है। ध्रुवा के साथ मृदंग अथवा पुष्कर वाद्य से संगति की जाती थी।

नाट्यशास्त्र के 28वें, 29वें और 30वें अध्यायों में संगीत सम्बन्धी तत्वों पर विचार किया गया है। कालान्तर में संगीत के यही अध्याय संगीताचार्यो के ग्रंथों के आधार बने। उनमें से मुख्य ग्रंथ इस प्रकार है– वृहद्देशीय, भरकोष, नारदीय शिक्षा, भरतभाष्यम्, संगीतरत्नाकर, नृत्याध्याय, स्वरमेलकलानिधि, रागीविबोध, चतुर्दण्डप्रकाशिका, संगीत दर्पण, संगीत पारिजात आदि। उपर्युक्त सभी ग्रंथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी न किसी प्रकार आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के ऋणी अवश्य रहे हैं।

आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र न केवल नाट्य काव्य और संगीत के तत्वों का विवेचन करता है वरन इन विषयों की स्वतंत्र धारा को विकसित करने के लिए आधार ग्रंथ के रूप में भी जाना जाता है।